

उपन्यास के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

सत्यवीर*

‘उपन्यास’ आधुनिक गद्य विधाओं में एक महत्वपूर्ण विधा है जो महाकाव्य और कहानी दो विधाओं के कलेवर को आत्मसात किये हुए हैं। उपन्यास व्यापक जीवनसन्दर्भ व युगबोध की कथा प्रस्तुति है, जिसका स्वरूप प्रबन्धात्मक होता है। उपन्यास और समाजशास्त्र एक ही युग के समान भौतिक और वैचारिक परिवेश की उपज है। अपने समाज, समय और इतिहास की प्रक्रिया से परिभाषित मनुष्य ही उपन्यास रचना का लक्ष्य है और समाजशास्त्रीय विश्लेषण का भी। साहित्य के समाजशास्त्र का मुख्य लक्ष्य है साहित्य की सामाजिक भूमि और सामाजिक भूमिका का विवेचन। समाज से उपन्यास के सम्बन्ध के अनेक सतर और रूप हैं। फिल्म के बाद उपन्यास ही आधुनिक युग का सर्वाधिक प्रतिनिधि कला रूप है। उपन्यास के सामाजिक आधार, अर्थ और अभिप्राय की खोज ने उसके समाजशास्त्रीय विश्लेषण को प्रमुखता प्रदान की है। मिशेल जेराफा ने लिखा है कि –

“उपन्यास ऐसी कला है जिसमें मनुष्य सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से निरूपित होकर सामने आता है।”¹

राल्फ फॉक्स ने उपन्यास के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए इस तथ्य को प्रकाशित किया है कि उपन्यास हमारी सभ्यता की महान लोक कला है, यद्यपि उपन्यास विधा नवीन है, किन्तु वह अपने को औचित्यपूर्ण, सार्वभौमिक एवं सर्वमान्य मात्र कथात्मक गद्य नहीं है, बल्कि वह जीवन का गद्य है।² आधुनिक पूंजीवादी समाज में उपन्यास ही महाकाव्य के रूप में प्रस्फुटित होता है। इसका उद्देश्य नये मानव की आवश्यकताओं को पूरा करना, उसकी आशा-आकांक्षाओं को व्यक्त करना तथा उसकी तूफानी दुनिया को चित्रित करना है। उपन्यास का विषय व्यक्ति है, वह समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध, व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है।³

रिचर्ड होगार्ट के शब्दों में कहा जा सकता है कि— ‘उपन्यास में साहित्यिक कल्पना की जो रचनरात्मक एकता मिलती है, उसी की खोज और पहचान उपन्यास के समाजशास्त्र का मुख्य लक्ष्य है।’⁴

उपन्यास का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण उस प्रक्रिया का अध्ययन करता है जिसके अन्तर्गत कोई भी कलात्मक कृति पाठकों द्वारा स्वीकृत या अस्वीकृत होती है। सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने में उपन्यास के योगदान का विश्लेषण, जन आकांक्षाओं की पूर्ति, निराशाओं एवं जीवन में उत्पन्न होने वाले तनावों से मुक्ति प्रदान करने तथा सामाजिक पुनर्निर्माण में उसकी भूमिका का मूल्यांकन आवश्यक है। साहित्य समाज की उपज है, अतः उसका अध्ययन समाज के परिप्रेक्ष्य में ही करना चाहिये।

कथाकार प्रेमचन्द ने उपन्यास की सार्थकता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है— “मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्त्व है।”⁵ उपन्यास में वर्णित समाज ही मानव समाज होता है, सामान्य मानव की तरह ही उसके पात्र भी उस समाज में अन्तः क्रियायें करते हैं, सम्बन्धों की स्थापना करते हैं, विभिन्न घात-प्रतिघातों, संघर्षों का मुकाबला करते हैं। उपन्यास का सृष्टा सामाजिक प्राणी होता है और समाज से ही वह अनुभूतियाँ ग्रहण करता है। उपन्यास के अस्तित्व का मूल आधार जीवन का पुनर्सृजन है। इस प्रकार उपन्यास मानव जीवन और सामाजिक सन्दर्भों की भावाभिव्यक्ति भी करता है। समाज सापेक्ष होने के कारण उपन्यास का समाजशास्त्रीय महत्त्व भी होता है। ‘उपन्यास सभी विज्ञानों के प्रभाव को लक्षित करता है। उपन्यास जीवन को समेटने के साथ-साथ क्रमशः इन सब विषयों के ज्ञान को अपने में अंकोरता चलता है, उपन्यास में सभी विषयों के ज्ञान का प्रभाव छन-छन कर आता है, पर इन विषयों का प्रभाव सीधे पड़ता है।’⁶

उपन्यास के समाजशास्त्रीय व्याख्या की अनेक पद्धतियाँ हैं। सबसे पुराना दृष्टिकोण विधेयवाद का है, जिसका नवीन रूप अनुभववाद में दिखाई देता है। इसमें इस ओर उपन्यास के सामाजिक अस्तित्व को निर्धारित करने वाली भौतिक परिस्थितियों का विश्लेषण होता है तो दूसरी ओर उपन्यास के पाठकीय ग्रहण का विवेचन किया जाता है। उपन्यास के समाजशास्त्र का एक और रूप मार्क्सवादी विश्लेषण में मिलता है, जिसमें अन्तर्वस्तु और रूप में निहित सामाजिक यथार्थ, चेतना, विचारधारा आदि की खोज होती है। पाश्चात्य आलोचना के क्षेत्र में मार्क्सवादी चिन्तक जार्ज लुकाच के योगदान का विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी मान्यताओं को ग्रहणकर गोल्डमान ने अपनी मौलिकता के अनुरूप उपन्यास के समाजशास्त्र को ‘उत्पत्ति मूलक संरचनावाद’ के सिद्धान्त के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रायः उपन्यास के

समाजशास्त्र में उपन्यासकार की वर्गचेतना, विचारधारा, या विश्वदृष्टि के सहारे उपन्यास का सामाजिक अभिप्राय जानने की कोशिश होती है।

डॉ० बी०डी० गुप्ता ने लिखा है— “उपन्यास का समाजशास्त्रीय महत्त्व है। वह समाज सापेक्ष होकर सामाजिक विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समग्रता के साथ प्रस्तुत करता है। इस समग्रता में केवल निष्प्राण वस्तुयें ही नहीं, बल्कि विभिन्न रीति-रिवाज, संस्थायें, आदतें, चलन आदि भी शामिल हैं, क्योंकि मानव समाज के एक निश्चित विकास स्तर की विशेषतायें हैं, जिसके आधार पर समाज को भली प्रकार समझा जा सकता है।” गुप्त जी ने केवल उपन्यास और साहित्य के समाजशास्त्र के सैद्धान्तिक विवेचन पर ही बल दिया है, किसी सिद्धान्त का निरूपण स्वतंत्र रूप से नहीं किया है।

उपन्यास के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों की ओर संकेत करते हुए सिंहल जी ने लिखा है कि— “उपन्यास साधारण जीवन के सामानान्तर चलने का पूरा प्रयत्न करता है। इसीलिए यह शिल्प के अनुशासन को, अन्य साहित्यिक विधाओं की भांति अधिक स्वीकार नहीं करता। उपन्यासकार पात्रों के मनोभावों को प्रखर करने के लिए नाटकीयता का आश्रय लेता है, प्रत्यक्षीकरण करता है।”⁸

पश्चिम में उपन्यास के समाजशास्त्र के निर्माण में जार्ज लुकाच का योगदान बहुत अधिक है। उनके लेखन में उपन्यास के समाजशास्त्र के विकास की दो अवस्थायें दृष्टिगोचर होती हैं। उनकी पुस्तक ‘उपन्यास का सिद्धान्त’ में उपन्यास के दार्शनिक, ऐतिहासिक और सामाजिक स्वरूप का गम्भीर विश्लेषण हुआ है। लुकाच की दृष्टि में उपन्यास एक इकाई के रूप में बुर्जुआ वर्ग और समाज के आर्थिक और राजनीतिक भाग्य को प्रतिबिम्बित करता है। उपन्यास केवल एक साहित्यिक रूप नहीं है, वह जीवन जगत को देखने की एक विशेष दृष्टि है और मानव जीवन तथा समाज का एक विशिष्ट बोध भी। उपन्यास का इतिहास दृष्टि और बोध के परिवर्तन का इतिहास भी है वह केवल उपन्यास के बदलते रूपों का इतिहास नहीं है। प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार मिखाईल बाख्तिन ने उपन्यास के स्वभाव की व्याख्या करते हुए लिखा है कि उसमें दृष्टियों और स्वरों की अनेकता से उपन्यास की संरचना में लोकतन्त्र आता है, हेगेल और जार्ज लुकाच ने उपन्यास में विशिष्टता और एकता को महत्त्व दिया था, लेकिन बाख्तिन अनेकता और विविधता को उपन्यास की संरचना की बुनियादी विशेषता मानते हैं।⁹ उपन्यास केवल यथार्थ की खोज और उसकी गति की पहचान का आख्यान ही नहीं हैं, वह सम्भावनाओं की तलाश का आख्यान भी है।

उपन्यास के समाजशास्त्र में यथार्थवाद की धारणा का आधार उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय उपन्यास रहे हैं। बीसवीं सदी में भी इस परम्परा का विकास रूसी

और फ्रांसीसी उपन्यासों में मिलता है। रचनाकार जिस समाज और परिवेश में जीता है, उसके यथार्थ का अनुभव अनेक रूपों में करता है। यथार्थ का सामान्य और तात्कालिक अनुभव जब विशिष्ट और सुनिश्चित बोध बनता है तब रचना का विषय बनता है। लेकिन दूसरे महायुद्ध के बाद फ्रांस में नया उपन्यास आन्दोलन चला जिसने उन्नीसवीं सदी के उपन्यासों की परम्परा और यथार्थवाद दोनों का विरोध किया। यूरोप में काका, जेम्स ज्वायस, वर्जीनिया बुल्फ, प्रूस्त, कामू और सार्त्र के उपन्यासों से उपन्यास रचना की नई दृष्टि सामने आयी। इन उपन्यासों में समाज की जगह ‘व्यक्ति’ रचना का केन्द्र बना, आत्मपरकता बढ़ी और उपन्यास के रूप में प्रयोगों की प्रवृत्ति बदल गयी।

उपन्यास का क्षेत्र एवं परिसर जितना व्यापक और विस्तृत है उतना किसी अन्य साहित्यिक विधा का नहीं है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का अभिमत है कि “मानव जीवन के विविध चित्रों को चित्रित करने का जितना अवकाश उपन्यासों में मिलता है उतना अन्य साहित्यिक उपकरणों में नहीं।”¹⁰

जैनेन्द्र जी ने भी लिखा है— “उपन्यास के बारे में मेरी अपनी धारणा यह है कि वह जीवन में गति देने के लिये है। गति यानी चैतन्य।”¹¹

डॉ० गोपाल राय के अनुसार— “उपन्यास के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें एक काल्पनिक सोच पर यथार्थ संसार का चित्रण होता है उपन्यास में वर्णित पात्र कल्पना प्रसूत होते हैं।”¹²

डॉ० चन्द्रकान्त वांदिबडेकर के मतानुसार— “मनुष्य जीवन के यथार्थ को चित्र देने की आकांक्षा रखने वाली इस विधा ने मनोरंजन के लिए परम्परागत साधन के रूप में कथा को स्वीकार किया, किन्तु मनुष्य चरित्र के माध्यम से जीवन के विविध रूपों का उद्घाटन करना ही उसकी प्रमुख आकांक्षा रही। समाज के परिवर्तनों के साथ मानव जीवन के बदलते प्रवाह के अनुकूल दो सौ वर्षों तक अपने को ढालने का प्रयत्न उपन्यास विधा ने किया। इसीलिए अन्य विधाओं की तुलना में वह अधिक लचीली और सर्वसमावेशी विधा कहलायी।”¹³

मानवीय चिन्ताओं का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करने के कारण उपन्यास साहित्य की सर्वश्रेष्ठ और लोकप्रिय विधा बन गयी है। कोई भी साहित्यिक रूप उपन्यास को प्रमुखता से अपदस्थ नहीं कर पाया है। उपन्यास अपने काल की विविध प्रवृत्तियों, द्वन्द्वों तथा ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियों का निरूपण करता है। सामाजिक यथार्थ को विस्तार और जटिलताओं में देखने की जैसी सम्भावना उपन्यास में है। वैसी अन्य किसी साहित्य रूप में नहीं है। डॉ० त्रिभुवन सिंह के मतानुसार— “उपन्यास गद्य साहित्य का वह समर्थ रूप है, जिसमें प्रबन्ध काव्य का सुसंगठित वस्तुविन्यास, महाकाव्य की सी व्यापकता, गीतों की सी

मार्मिकता, नाटकों का सा प्रभाव गंभीर्य तथा कहानियों की सी कलात्मकता एक साथ मिल जायेगी।¹⁴ आज उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की आवश्यकता इसलिए भी है, क्योंकि उपन्यास ने साहित्य की संस्कृति का स्वरूप बदला है। भारतीय समाज के जो हिस्से, समुदाय और व्यक्ति मुख्यधारा से अलग हाशियें पर रहने के लिए मजबूर थे, वे साहित्य संसार के भी हाशियें पर ही रहने के लिए अभिसप्त थे। मुख्यधारा से बहिष्कृत, उपेक्षित अदृश्य और बेजुबान जन को उपन्यास के माध्यम से साहित्य संसार के नागरिक बनने लगे और नायक भी, बल्कि जो साहित्य के नायक होते थे, वे उपन्यास में खलनायक बनने लगे। हिन्दी में प्रेमचन्द्र के उपन्यासों के माध्यम से साहित्य संसार में लोकतंत्र आया। उपन्यास मुक्तिधर्मी आख्यान है। वह अपने पाठकों को न आदेश देता है, न उपदेश। वह समाज और जीवन के बारे में सोचने की प्रेरणा देता है। वह प्रश्न करता है और उत्तर खोजने में पाठकों की मदद करता है। उपन्यास के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में यह भी देखा गया है कि उपन्यास ने सामाजिक व्यवस्थाओं, विचारधाराओं, पितृसत्ता से उपजी पराधीनताओं, जाति व्यवस्था, गुलामी, नस्लभेद, उपनिवेशवाद, आधिपत्य, अस्मिता, साम्प्रदायिकता, लोकतंत्र और यहाँ तक कि स्वयं अपने स्वरूप के बारे में प्रश्न करते हुए पाठकों की चेतना और सहानुभूतियों का विस्तार किया है। डी०एच० लारेंस ने 'उपन्यास को जीवन की एक चमकदार किताब कहा है।'¹⁵

अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास की उत्पत्ति और विकास पश्चिम में और भारत में लोकतांत्रिक चेतना के जन्म तथा विकास के साथ हुआ है। उपन्यास विभिन्न समाजों, राष्ट्रीयताओं, समुदायों और वर्गों की अस्मिताओं की पहचान और अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। यह व्यक्ति की स्वाधीनता का विधायक और रक्षक भी रहा है। उपन्यास मध्ययुगीनता के विरुद्ध आधुनिकता के विद्रोह की अभिव्यक्ति करने वाला साहित्य रूप है। आज समाज का जितना गहरा सरोकार उपन्यास विधा का है, उतना अन्य किसी साहित्यिक विधा का नहीं। इसीलिए आज साहित्य चिन्तकों के बीच उपन्यास का समाजशास्त्रीय विवेचन और विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची —

1. डॉ० मैनेजर पाण्डेय : साहित्य और समाजशास्त्र की भूमिका, पृ० 227.
2. राल्फ फॉक्स : उपन्यास और लोकजीवन, अनुवादक—नरोत्तम नागर, 1947, पृ० 2.
3. वही, पृ० 27—28
4. डॉ० मैनेजर पाण्डेय : साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, पृ० 228.
5. प्रेमचन्द्र : साहित्य का उद्देश्य, पृ० 54.

6. डॉ० श्रीनारायण अग्निहोत्री : हिन्दी उपन्यास का शास्त्रीय विवेचन, पृ० 136.
7. डॉ० विश्वम्भर दयाल गुप्ता : उपन्यास का समाजशास्त्र, पृ० 39.
8. डॉ० शशिभूषण सिंहल : हिन्दी उपन्यास : यात्रा गाथा
9. डॉ० मैनेजर पाण्डेय : आलोचना की सामाजिकता, पृ० 241.
10. डॉ० नन्ददुलारे बाजपेयी : नया साहित्य नये प्रश्न
11. जैनेन्द्र कुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० 163.
12. डॉ० गोपाल राय : हिन्दी कथा साहित्य और पाठकों की रुचि का प्रभाव, पृ० 206.
13. डॉ० चन्द्रकान्त बांदिबडेकर : हिन्दी उपन्यास स्थिति और गति, पृ० 2.
14. डॉ० त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० 6.
15. डॉ० मैनेजर पाण्डेय : आलोचना की सामाजिकता, पृ० 260.

